विज्ञप्ति

एक प्रति - 10 रु.
एक वर्ष - 300 रु.
पन्द्रह वर्ष - 3100 रु.

तेरापंथ की केन्द्रीय गतिविधियों का सर्वाधिक लोकप्रिय साप्ताहिक मुखपत्र

विज्ञप्ति (साप्ताहिक) : वर्ष 24 : अंक 31 : नई दिल्ली : 26 अक्टूबर से 1 नवम्बर 2018

परम पूज्य आचार्यश्री महाश्रमणजी आदि श्रमण तथा महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी आदि श्रमणी चेन्नई में सानंद सुखसातापूर्वक विराजमान हैं। चतुर्मास समाप्ति में अब एक माह से भी कम समय शेष रह गया है। चतुर्मास के उपरान्त २४ नवम्बर को पूज्यप्रवर चतुर्मास स्थल से मंगल प्रस्थान कर देंगे। पूज्यप्रवर की मंगल सन्निधि में आगामी ११ नवम्बर को समायोज्य दीक्षा समारोह चतुर्मास के अवशिष्ट आयोजनों में एक प्रमुख आकर्षण है।

परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमण चेन्नई में

शब्दों को मूल्यवान बनाएं

१५ अक्टूबर। मनुष्य के पास पांच इन्द्रियां होती हैं। मन को नोइन्द्रिय कहा जाता है। उसे मिलाकर इन्द्रियां छह हो जाती हैं। पांचों इन्द्रियां और मन हमारे जीवन से बहुत गहराई से जुड़े हुए हैं। शास्त्रकार ने छह इन्द्रियार्थ (इन्द्रिय विषय) बताए हैं--

१. श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है--शब्द
२. चक्षुरिन्द्रिय का विषय है--वर्ण
३. घ्राणेन्द्रिय का विषय है--गंध
४. जिह्वेन्द्रिय का विषय है--रस
५. स्पर्शेन्द्रिय का विषय है--स्पर्श
६. नोइन्द्रिय अर्थात् मन के विषय शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श पांचों ही होते हैं। मन सर्वार्थग्राही होता है। पांचों इन्द्रियों से ग्रहण किए गए विषयों पर मनन करना मन का कार्य होता है।

शब्द हमारे ज्ञान का बड़ा माध्यम बनता है। वक्ता के शब्द दूसरे लोगों के कान में पड़ते हैं, उन्हें वे ग्रहण करते हैं, उन पर मनन करते हैं और उन शब्दों के अनुरूप आचरण भी कर सकते हैं। वक्ता यह ध्यान दे कि मैं अपने वक्तव्य में अच्छी सामग्री परोसूं, ताकि श्रोताओं को तृप्ति मिले। शब्दों में याथार्थ्य, सार्थकता, ज्ञान, उपयोगिता, प्रासंगिकता, हितावहता आदि होते हैं तो वे मूल्यवान हो सकते हैं। शब्द का प्रयोग जप में भी किया जाता है। उन शब्दों की अर्थात्मा के साथ तादात्म्य स्थापित होता है तो उनसे चेतना पर अच्छा प्रभाव भी पड़ सकता है, चेतना उनसे तरंगित हो सकती है।'

पाप रूपी शृगाल से बचें

१६ अक्टूबर। परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर ने मुख्य प्रवचन कार्यक्रम के दौरान 'ठाणं' आगमाधारित अपने पावन प्रवचन में कहा--'अध्यात्म की साधना में दो आयाम हैं--संवर और निर्जरा। इन दोनों में सारी आध्यात्मिक साधना समाविष्ट हो जाती है, ऐसा प्रतीत हो रहा है। संवर वह तत्त्व है, जो नए सिरे से कर्मों को आने से रोकता है और निर्जरा वह तत्त्व है, जो नए पहले से बंधे हुए कर्मों को तोड़ता है। आत्मा के नए सिरे से कर्मों का बंध न हो, उसके लिए संवर की साधना आवश्यक है। व्रत संवर में त्याग किया जाता है जैसे- हिंसा का त्याग, झूठ बोलने का त्याग आदि। कहीं संवर के पांच और कहीं बीस भेद भी बताए गए हैं।

'ठाणं' के छठे स्थान में संवर के छह प्रकार बताए गए हैं--श्रोत्रिन्द्रिय संवर--कान से सुने जाने वाले शब्दों में राग-द्वेष नहीं करना। इसी प्रकार अन्य चार इन्द्रियों और नोइन्द्रिय अर्थात् मन द्वारा ग्रहण किए जाने वाले विषयों में राग-द्वेष नहीं करना क्रमशः चक्षुरिन्द्रिय संवर, घ्राणेन्द्रिय संवर, जिह्वेन्द्रिय संवर, स्पर्शेन्द्रिय संवर और नोइन्द्रिय संवर होता है। इन्द्रियों का संयम करना अच्छी साधना होती है संयम की दृष्टि से कछुए को उदाहृत किया जाता है। पाप रूपी शृगाल से बचने के लिए मनुष्यरूपी कछुए को इन्द्रिय के असंयम से बचना चाहिए।

आंख बहुत उपयोगी होती है, उसका संयम करना चाहिए। आसक्तिमान होकर अनपेक्षित रूपों को देखने में प्रवृत्त होना आंख का दुरुपयोग होता है, असंयम होता है। आगम आदि ग्रन्थों के अध्ययन, चारित्रात्माओं के दर्शन, अच्छे लेखन आदि में आंखों का प्रयोग करना उनका सदुपयोग होता है। आंखे बंद करके जप-ध्यान में लीन होने से भी आंखों का कितना संयम हो सकता है। कितने-कितने मनुष्यों को तो आंखों की ज्योति प्राप्त ही नहीं हैं, ऐसे में जिन्हें आंखों की रोशनी प्राप्त है, उन्हें आंखों का सदुपयोग करना चाहिए, संयम करना चाहिए।

इन्द्रियों के अनावश्यक उपयोग से और आवश्यक उपयोग में राग-द्वेष से बचें

१७ अक्टूबर। परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर ने मुख्य प्रवचन कार्यक्रम के दौरान अपने पावन प्रवचन में कहा--'अध्यात्म की साधना में संवर की साधना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संवर नहीं होता है तो असंवर की स्थिति रहती है। शास्त्रकार ने इन्द्रियों के संदर्भ में असंवर के छह प्रकार बताए हैं--श्रोत्रेन्द्रिय असंवर, चक्षुन्द्रिय असंवर, घ्राणेन्द्रिय असंवर, जिह्वेन्द्रिय असंवर, स्पर्शेन्द्रिय असंवर और नोइन्द्रिय असंवर। पांचों इन्द्रियों और मन का असंवर पाप कर्मों का बंध करने वाला होता है। असंवर की अवस्था में आश्रव रहता है। आश्रव भव (जन्म-मरणरूपी संसार) और संवर मोक्ष का कारण बनता है। आश्रव न हो तो जन्म-मरण की परंपरा आगे से आगे चल नहीं सकती।

आश्रव कर्मों के आने का मार्ग है। वह नौका के छेद के समान है। आश्रवरूपी छेद से कर्मरूपी पानी आत्मारूपी नौका में प्रविष्ट होकर उसे डुबोने वाला बन जाता है। इन्द्रियों का असंयम भव-भ्रमण की परंपरा को बढ़ाने में सहायक बनता है। साधु को अपनी इन्द्रियों का संयम करना चाहिए, कहीं स्वयं से प्रमाद होता प्रतीत होता हो, तत्काल स्वयं का संहरण कर लेना चाहिए, अपनी लगाम खींच लेनी चाहिए।

आदमी जिह्व का भी असंयम, असंवर कर लेता है। मनोज्ञ पदार्थ को आसक्ति के कारण ज्यादा खाने से तकलीफ भी हो सकती है। स्वाद तो जीभ को आता है, किन्तु परिणाम शरीर के अन्य अवयवों को भोगना पड़ सकता है। जीभ को जीतना भी आसान कार्य नहीं है। धन्य हैं उन्हें, जो जीभ का संयम कर लेते हैं, स्वाद विजय की साधना साध लेते हैं।

शब्द कान में पड़ें ही नहीं, आंखें रूप को देखें ही नहीं, नाक में गंध आए ही नहीं, जीभ पदार्थों को चखे ही नहीं और त्वचा स्पर्श करे ही नहीं, यह कठिन या असंभव है। आदमी को इन्द्रियों के अनावश्यक उपयोग से और आवश्यक उपयोग में राग-द्वेष से बचना चाहिए। इन्द्रियों का संवरण कर कल्याण की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है।

पूज्यप्रवर ने प्रसंगवश कहा--'साधु के लिए एक स्थान पर लम्बे समय तक रहना कठिनाई भी पैदा कर सकता है। इसलिए हमारे यहां चारित्रात्मा-समुदाय का सामान्य नियम है कि जहां एक चतुर्मास कर लिया, वहां आगे दो वर्षों तक चतुर्मास नहीं करना। जैसे--किसी साधु के सिंघाड़े ने सन् २०१८ में चेन्नई के साहुकारपेट में कर लिया तो आगामी दो वर्षों के चतुर्मास वह सिंघाड़ा सामान्यतया वहां पुनः नहीं कर सकता। इसका तात्पर्य है कि साधु को सामान्यतया सक्षम अवस्था में एक जगह जमकर नहीं रहना चाहिए।'

लाडनूं से समागत मुमुक्षु बहनों ने गीत के माध्यम से गुरुदर्शन से प्राप्त अपनी प्रसन्नता को अभिव्यक्त किया।

दुःखदायी होते हैं काम-भोग

१८ अक्टूबर। परम पूज्य आचार्यप्रवर ने मुख्य प्रवचन कार्यक्रम के दौरान 'ठाणं' प्रवचन शृंखला के क्रम को आगे बढ़ाते हुए कहा--'प्राणी के मन में सुखसाता पाने की आकांक्षा भी रहती है। एक होता है आध्यात्मिक सुख, वह आत्मा से निष्पन्न होता है, वह भीतर का सुख होता है। दूसरा होता है भौतिक सुख-- पदार्थ संबंधी सुख। भौतिक सुख कुछ समय का होता है। आध्यात्मिक सुख शाश्वत भी हो सकता है। भौतिक सुख थोड़े काल के होते हैं और ये लम्बे समय तक ज्यादा दुःख देने वाले हो सकते हैं। इन्द्रियों से मिलने वाला वैषयिक सुख भौतिक होता है अर्थात् काम-भोगों को आसक्ति से भोगना दुःखदायी होता है। शास्त्रकार ने इन्द्रियों के संदर्भ में छह सात (सुख) बताए हैं--१. श्रोत्रेन्द्रिय सात २. चक्षुरिन्द्रिय सात ३. घ्राणेन्द्रिय सात ४. जिह्वेन्द्रिय सात ५. स्पर्शेन्द्रिय सात ६. नोइन्द्रिय सात। इन्द्रियों के संदर्भ में छह असात (असुख) भी बताए गए हैं--१. श्रोत्रेन्द्रिय असात २. चक्षुरिन्द्रिय असात ३. घ्राणेन्द्रिय असात ४. जिह्वेन्द्रिय असात ५. स्पर्शेन्द्रिय असात ६. नोइन्द्रिय असात। इन्द्रियों की सक्षमता, स्वस्थता और मन की प्रसन्नता सात की स्थितियां हैं। इसके विपरीत इन्द्रियों की अक्षमता, अस्वस्थता तथा मन की अप्रसन्नता आसात की स्थितियां हैं। दूसरे दृष्टिकोण से देखें तो इन्द्रियों और मन को मनोज्ञ विषय प्राप्त होना सात और अमनोज्ञ विषय प्राप्त होना असात होता है।

जीवन में अनुकूलताएं भी प्राप्त हो सकती हैं और कभी प्रतिकूलताओं की स्थितियां भी आ सकती हैं। आदमी दोनों स्थितियों में शांति में रहे, यह काम्य है। चिन्तन प्रशस्त होता है तो प्रतिकूलताओं में भी शान्त रहा जा सकता है।'

राष्ट्रीय संस्कार निर्माण शिविर का समायोजन

परम पूज्य आचार्यप्रवर की मंगल सन्निधि में जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा के तत्त्वावधान में आयोजित अष्टदिवसीय राष्ट्रीय संस्कार शिविर आज परिसम्पन्न हुआ। परम पूज्य आचार्यप्रवर ने इस संदर्भ में कहा-- 'जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा के तत्त्वावधान में इन दिनों बालक-बालिकाओं का संस्कार निर्माण शिविर लगा। कितने बालक-बालिकाओं को लाभान्वित होने का अवसर प्राप्त हुआ। महासभा के तत्त्वावधान में ऐसे शिविर लगते हैं, यह बहुत ही अच्छा प्रयोग लग रहा है। इसके माध्यम से बालक-बालिकाओं को अच्छा ज्ञान और अच्छे संस्कार देने का मौका मिल जाता है। बालक-बालिकाओं में तत्त्वज्ञान का भी विकास हो और साथ में नम्रता, निर्भीकता, नैतिकता, नशामुक्ति जैसे संस्कार भी पुष्ट रहें तो बालपीढ़ी का अच्छा निर्माण हो सकता है। संस्कार निर्माण और ज्ञानवर्धन की दृष्टि से यह शिविर एक अच्छा उपक्रम लग रहा है। इस प्रकार के उपक्रमों से बालपीढ़ी को विकास का अवसर दिया जा सकता है।'

कार्यक्रम के दौरान तेरापंथी महासभा के न्यासी श्री ज्ञानचंद आंचलिया तथा राष्ट्रीय संस्कार निर्माण शिविर की सहसंयोजिका श्रीमती नीता गादिया ने अपनी भावाभिव्यक्ति दी। शिविरार्थी बालक-बालिकाओं ने गीत के द्वारा अपने कृतज्ञ भावों को अभिव्यक्त किया।

परम पूज्य आचार्यप्रवर की मंगल सन्निधि में जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा के तत्त्वावधान में आयोजित राष्ट्रीय संस्कार निर्माण शिविर में करीब ३३५ बालक-बालिकाएं संभागी बने। संभागी बालक-बालिकाओं को परमाराध्य आचार्यप्रवर से पावन पाथेय प्राप्त हुआ। विभिन्न क्षेत्रों से समागत शिविरार्थियों को पूज्यप्रवर के समक्ष प्रस्तुति का अवसर भी प्राप्त हुआ। महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी ने भी संभागियों को प्रेरणा प्रदान की। संभागी बालकों को मुनि चैतन्यकुमारजी, मुनि दिनेशकुमारजी, मुनि योगेशकुमारजी, संस्कार निर्माण

शिविर के आध्यात्मिक पर्यवेक्षक मुनि जितेन्द्रकुमारजी, मुनि सुधाकरजी, मुनि सुधांशुकुमारजी, मुनि गौरवकुमारजी, मुनि अनेकान्तकुमारजी तथा मुनि सत्यकुमारजी एवं संभागी बालिकाओं को साध्वी शशिप्रभाजी, साध्वी सुमंगलप्रभाजी, साध्वी प्रांजलयशाजी, समणी नियोजिका चारित्रप्रज्ञाजी, समणी मलयप्रज्ञाजी, समणी शशिप्रज्ञाजी, समणी रत्नप्रज्ञाजी तथा समणी भास्करप्रज्ञाजी से प्रशिक्षण प्राप्त हुआ। राष्ट्रीय संस्कार निर्माण शिविर के संयोजक श्री महेन्द्र सेठिया, श्री विजय सुराणा, श्री सिद्धान्त बोहरा, श्री विक्रम सेठिया, श्री हरीश भंडारी, श्री विनोद सियाल, श्री पंकज जैन, श्री दिनेश धोका, श्री रोहित कोठारी, श्री रमेश खटेड़, श्री अल्फस जैकन वरदराजन, श्रीमती प्रियंका बोहरा, श्रीमती सीमा गादिया, श्रीमती बबीता चोपड़ा, श्रीमती अनिता चौपड़ा, श्रीमती जयश्री डागा, श्रीमती साधना परमार तथा श्रीमती शीला सियाल भी प्रशिक्षण कार्य में सहयोगी रहे।

बालयोगी मुनि प्रिंसकुमारजी ने किया सबसे छोटी उम्र में मासखमण

परमपूज्य आचार्यप्रवर की पावन सन्निधि में बालयोगी मुनि प्रिंसकुमारजी (पदराड़ा-सफाला) ने जैन श्वेताम्बर तेरापंथ धर्मसंघ में सबसे छोटी उम्र में मासखमण तप कर एक नया कीर्तिमान बनाया। आज प्रातः सूर्योदय के बाद वे अपनी तीस दिनों की तपस्या के पारणे से पूर्व पूज्यप्रवर के पावन सान्निध्य में उपस्थित हुए। मुनिवृंद और साध्वीवृंद ने पृथक-पृथक गीत के द्वारा नन्हें तपस्वी मुनि का अभिनन्दन किया। मुख्यमुनिश्री ने उनके संदर्भ में स्वरचित गीत का संगान किया। महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी ने उनके संदर्भ में अपने द्वारा रचित पद्यों के माध्यम से उन्हें साधुवाद दिया। बालयोगी मुनि प्रिंसकुमारजी ने अपने हृदयोद्गार व्यक्त किए।

परमपूज्य आचार्यप्रवर ने अपने बालयोगी को मंगलपाठ सुनाकर मंगल आशीर्वाद के साथ ग्रास (खाद्य सामग्री) बख्साया। ज्ञातव्य है कि ८ दिसम्बर २००४ को जन्मे बालयोगी मुनिश्री प्रिंसकुमारजी ने इससे पूर्व जैन श्वेताम्बर तेरापंथ धर्मसंघ की चारित्रात्माओं में सबसे छोटी उम्र में अठाई और पन्द्रह की तपस्या कर भी कीर्तिमान बनाया था तथा अब जीवन के चौदहवें वर्ष में मासखमण कर धर्मसंघ में एक नया कीर्तिमान रच दिया। वे आचार्यश्री महाश्रमणजी के शासनकाल में अब तक दीक्षित साधु-साध्वियों में सबसे छोटी उम्र में दीक्षित होने वाले साधु हैं। उन्होंने अपने जीवन के प्रथम दशक में २ फरवरी २०१४ को दीक्षा ग्रहण की। आचार्यप्रवर उन्हें यदा-कदा बालयोगी के नाम से पुकारते हैं।

साधु और श्रावक का पथ एक है, पर रथ अलग-अलग

१६ अक्टूबर। परम श्रद्धास्पद आचार्यप्रवर ने मुख्य प्रवचन कार्यक्रम के दौरान 'ठाणं' आगमाधारित अपने मंगल प्रवचन में कहा--'हमारी दुनिया में सुख भी है तो दुःख भी है। संसार में जन्म दुःख है, बुढ़ापा दुःख है, बीमारी दुःख है, मृत्यु दुःख है। मनुष्य के जीवन का एक लक्ष्य यह होना चाहिए कि वह सर्व दुःखमुक्ति की दिशा में आगे बढ़े। सिद्ध भगवान मोक्ष में विराजमान होते हैं, उन्हें कोई दुःख नहीं होता। वहां शरीर और मन नहीं होते, इसलिए सिद्धों को शारीरिक, वाचिक और मानसिक दुःख नहीं हो सकता। आदमी सर्व दुःखमुक्ति की दिशा में आगे बढ़ने के लिए अध्यात्म की साधना करे। आध्यात्मिक साधना के बिना सर्व दुःखमुक्ति नहीं हो सकती। संसारी अवस्था में आत्मा नए-नए जन्म को प्राप्त करती रहती है और जन्म होता तो मृत्यु भी निश्चित है। सिद्धावस्था को प्राप्त जीव इस जन्म-मरण की परंपरा से मुक्त हो चुका होता है।

दुःखों से छुटकारा पाने का उपाय है अध्यात्म की आराधना करना, आत्म निग्रह की साधना करना, साधु बनना और उसका यावज्जीवन पालन करना। कोई साधु न बन सके तो उसके लिए अणुव्रतों का पथ बताया गया। साधु और श्रावक का पथ एक ही है, किन्तु रथ की गति का अंतर होता है। महाव्रतों का रथ कुछ द्रुत गति से चलने वाला होता है, उसकी अपेक्षा अणुव्रत का रथ मंद गति वाला होता है। महाव्रतों का रथ अपेक्षाकृत जल्दी मंजिल को प्राप्त करा सकता है, जबकि अणुव्रतों के रथ से मंजिल प्राप्ति में कुछ अधिक समय

भी लग सकता है।'

पूज्यप्रवर ने प्रसंगवश कहा--'कुछ दिनों बाद भगवान महावीर का निर्वाण दिवस कार्तिकी अमावस्या आने वाली है। उसे दीपावली के रूप में भी मनाया जाता है। उस दिन पटाखे छोड़ने वाले छोड़ते होंगे, किन्तु पटाखों से हिंसा हो सकती है। पटाखों का संयम होना चाहिए। पटाखों के परिवर्जन का संकल्प करना चाहिए। उस दिन भगवान महावीर का स्मरण, जप करना चाहिए। दीपावली के संदर्भ में संसार में और भी कई उपक्रम हो सकते हैं, किन्तु ऐसे उपक्रमों से बचना चाहिए, जिनमें अनावश्यक हिंसा होने की संभावना हो।

आज आश्विन शुक्ला दशमी है। इसे दशहरा/विजयदशमी के रूप में मनाया जाता है। हम तो अपने कषायों, दुर्गुणों, अपनी कमियों पर विजय पाने का प्रयास करें, यह अभीकांक्ष्य है। जो अपनी आत्मा को जीत लेता है, वह परम विजयी होता है। विजयदशमी से अपनी आत्मा को जीतने की प्रेरणा प्राप्त करना श्रेयस्कर हो सकता है।'

कार्यक्रम के दौरान श्री कांतिलाल पीपाड़ा ने अपनी विचाराभिव्यक्ति दी।

परम पूज्य आचार्यप्रवर का दिगम्बर आचार्यश्री पुष्पदन्तसागरजी से मधुर मिलन

२० अक्टूबर। आज प्रातः सूर्योदय के आसपास दिगम्बर आम्नाय के आचार्यश्री पुष्पदन्तसागरजी आचार्यश्री महाश्रमण प्रवास स्थल में पधारे। पूज्यप्रवर ने कुछ कदम आगे पधारकर उनसे भेंट की। तदुपरान्त आचार्यद्वय नमस्कार सभागार में आसीन हुए। दोनों आचार्यप्रवर के मध्य वार्तालाप का दौर चला। इस दौरान दिगम्बर आम्नाय के आचार्यप्रवर ने महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी से भी वार्तालाप किया। आज का मुख्य प्रवचन कार्यक्रम दोनों आचार्यप्रवर के संयुक्त सान्निध्य में आयोजित हुआ।

परम श्रद्धास्पद आचार्यश्री महाश्रमण ने कार्यक्रम के अन्तर्गत 'ठाणं' आगमाधारित अपने पावन प्रवचन में कहा--'आदमी के जीवन में चलते-चलते कभी गिरने की भी स्थिति आ सकती है, कभी मामूली चोट भी लग सकती है। साधना के पथ पर भी चलते-चलते कहीं कोई चारित्र में भी चोट आ सकती है। कहीं ज्ञान-दर्शन में कुछ क्षति की बात हो सकती है, अतिचरण हो सकता है। आदमी बीमारी को ठीक करने के लिए दवा खा लेता है और कई बार चिकित्सक के परामर्शानुसार दवा लेता है। कभी-कभी शरीर में कोई गांठ आदि हो जाती है तो शल्यक्रिया (ऑप्रेशन) के द्वारा कुछ हिस्से को बाहर निकाला जाता है। ये सारे चिकित्सा के प्रयोग हैं। कोई बीमारी मात्र दवा से ठीक हो सकती हैं और किसी स्थिति में शल्यक्रिया आवश्यक हो जाती है। साधना के क्षेत्र में व्रतों में अतिचार लग जाने का अर्थ है बीमारी लग जाना, चोट लग जाना। जिस प्रकार दवा या ऑप्रेशन से शरीर को ठीक किया जाता है, उसी प्रकार साधना रूपी शरीर को ठीक करने के लिए प्रायश्चित्त रूपी चिकित्सा की आवश्यकता होती है। प्रायश्चित्त का अर्थ है अपने दोषों का स्मरण करना और उसका शुद्धीकरण करना। प्रायश्चित्त में भी मुझे दोनों रूप दिखाई दिए। मानों उसमें औषध का भी विधान है और ऑप्रेशन का भी विधान है।

जैन वाङ्मय में प्रायश्चित्त के अन्तर्गत तप भी बताया गया है और छेद भी बताया गया। तप औषध ा के रूप में होता है और छेद ऑप्रेशन के रूप में है। छेद सातवां प्रायश्चित्त है। इसके अन्तर्गत संयम पर्याय की अवधि को कुछ काटा जाता है। 'ठाणं' आगम के छठे स्थान में प्रायश्चित्त के छह प्रकार बताए गए हैं--

१. आलोचना योग्य- गुरु के सामने सरलता से अपने दोषों का निवेदन।
२. प्रतिक्रमण योग्य- 'मिच्छामि दुक्कड़ं' का भावनापूर्वक उच्चारण।
३. तदुभय योग्य- आलोचना और प्रतिक्रमण।
४. विवेक योग्य- अशुद्ध आहार आदि का उत्सर्ग।
५. व्युत्सर्ग योग्य- कायोत्सर्ग।

६. तपःयोग्य- अनशन, ऊनोदरी आदि।

वस्त्र में कहीं कोई कीचड़ आदि के छींटे लग जाएं तो उन्हें साबुन आदि से साफ करने का प्रयास किया जाता है। इसी प्रकार संयम की, व्रत की चद्दर पर प्रमाद से अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार के छींटे लग जाएं तो उन्हें प्रायश्चित्त रूपी शोधन क्रम से साफ कर लेना चाहिए। आध्यात्मिक जगत में आचार्य आदि चिकित्सक होते हैं। जैसे- बीमार आदमी चिकित्सक के पास जाता है, वैसे ही अपनी आत्मा की बीमारी के इलाज के लिए आध्यात्मिक चिकित्सक के पास जाना चाहिए।

डॉक्टर से बीमारी और गुरु से अपना दोष छुपाना नहीं चाहिए। डॉक्टर को रोग नहीं बताया जाएगा तो चिकित्सा सम्यक्तया कैसे होगी। इसी प्रकार गुरु के सामने दोष को छुपाया जाएगा तो आत्मा का शुद्धीकरण कैसे होगा। प्रायश्चित्त के लिए एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है सरलता। छलना नहीं करनी चाहिए। जैसी बात हो, गुरु के सामने रख देनी चाहिए। सरलता और साहस के साथ गुरु के सामने अपनी गलती यथार्थ रूप में बता दी जाए तो दोष शुद्धी अच्छे रूप में हो सकती है।'

पूज्यप्रवर ने मंचासीन दिगम्बर आचार्यश्री पुष्पदन्तसागरजी के संदर्भ में कहा--'आज सवेरे-सवेरे दिगम्बर आम्नाय के पुष्पदन्तसागरजी महाराज का पदार्पण हुआ। पहले भी चेन्नई में मिलना हुआ था, साथ बैठना हुआ था, उस समय बातचीत का प्रसंग भी बना। आज पुनः आपका यहा समागमन हुआ है। आपके आगमन से हमें अच्छा लग रहा है।

पिछले अर्से में तरुणसागरजी महाराज का देहावसान हो गया था। अनेक बार उनके साथ हमारे कार्यक्रम हुए थे। वे एक अच्छे वक्ता मुनि थे। उनके वक्तव्य का अपना प्रभाव था। वे कालधर्म को प्राप्त हो गए। अपना शिष्य छोटी उम्र में चला जाए, गुरु के रहते शिष्य चला जाए, कुछ उल्टी सी बात होती है, किन्तु काल की अपनी स्थिति होती है। काल के लिए कोई भी समय अनवसर नहीं होता। पुष्पदन्तसागरजी महाराज खूब चित्तसमाधि में रहें। आप से आज मिलना हुआ। प्रातःकाल भी साथ बैठना हुआ, उस समय भी कुछ चर्चा चली। मध्याह्न में पुनः चर्चा हो सकेगी। आपकी साधना का क्रम अच्छे रूप में चलता रहे। आपके द्वारा जैन शासन और मानवजाति की खूब अच्छी सेवा होती रहे। बहुत-बहुत मंगलकामना।'

आचार्यश्री महाश्रमणजी के पास सुदामा की तरह आया हूं : आचार्यश्री पुष्पदन्तसागरजी

दिगम्बर आम्नाय के आचार्यश्री पुष्पदन्तसागरजी ने कहा--'मैं आचार्यश्री महाश्रमणजी के पास आकर गद्गद् हूं, आनन्दित हूं, पुलकित हूं। आप बहुत सहज हैं, सरल हैं। यह सहजता ही हमारे निर्माण का कारण बनती है। मैं तो आचार्यश्री महाश्रमणजी के पास सुदामा की तरह आया हूं। मैंने सोचा कि आपसे आत्मीयता से मिलूं और आप के पास चर्चा करूं। मैं जब सवेरे आया, तब सभी लोग आपके सान्निध्य में बैठकर पाठ कर रहे थे, इतना मधुर लग रहा था। ऐसा तो स्वर्ग में भी नहीं हो सकता है। मुझे बहुत आनन्द आ रहा था। मैं सुनता ही रह गया। आचार्यश्री महाश्रमणजी के सान्निध्य में बैठकर आप लोग बहुत कुछ हासिल कर रहे हैं। यह आपके जीवन की उपलब्धि है। आप लोग आचार्यश्री महाश्रमणजी से सरलता का थोड़ा भी अंश ग्रहण कर लें तो आपका जीवन भी बहुत अच्छा बन जाए। आचार्यश्री महाश्रमणजी से मिलकर मुझे बहुत अच्छा लगा।'

प्रवास व्यवस्था समिति के उपाध्यक्ष श्री प्रकाश मूथा ने अपनी भावाभिव्यक्ति दी।

मध्याह्न में 'महाश्रमण सभागार' में आचार्यद्वय के सान्निध्य में जिज्ञासा-समाधान का क्रम रहा, जिसके अन्तर्गत दिगम्बर और श्वेताम्बर--दोनों आम्नायों की मान्यताओं आदि के संदर्भ में चर्चा चली। आचार्यश्री पुष्पदन्तसागरजी का आज का दिन-रात्रि का प्रवास पूज्यप्रवर के चतुर्मास स्थल परिसर में ही हुआ, २१ अक्टूबर की प्रातः (पश्चिम रात्रि) में वे परमपूज्य आचार्यश्री महाश्रमणजी से मिलकर अपने गन्तव्य की ओर

प्रस्थित हुए। विदा की इस वेला में परमाराध्य आचार्यप्रवर उनके साथ मुख्य द्वार तक पधारे। जिनशासन की दो धाराओं के प्रमुख आचार्यों का मधुर मिलन दोनों परम्पराओं के लिए आह्लाददायक रहा।

डॉक्टर्स कॉन्फ्रेन्स और इंजिनियर्स अधिवेशन की समायोजना

परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर के पावन सान्निध्य में तेरापंथ प्रोफेशनल फोरम के तत्त्वावधान में आयोजित तीसरी राष्ट्रीय डॉक्टर्स कॉन्फ्रेन्स और प्रथम इंजिनियर्स कॉन्फ्रेन्स के संदर्भ में आज (२० अक्टूबर) के मुख्य प्रवचन कार्यक्रम के दौरान तेरापंथ प्रोफेशनल फोरम के अध्यक्ष श्री निर्मल कोटेचा, डॉक्टर्स कॉन्फ्रेन्स के संयोजक डॉ. कैलाश माण्डोत तथा इंजिनियर्स कॉन्फ्रेन्स के संयोजक डॉ. दिनेश धोका ने अपनी भावाभिव्यक्ति दी।

परमपूज्य आचार्यप्रवर की पावन सन्निधि में आयोजित एक दिवसीय इंजिनियर्स कॉन्फ्रेन्स में ६० तेरापंथी इंजिनियर्स तथा चेन्नई की दो इंजिनियर कॉलेज के १२० विद्यार्थी संभागी बने। 'इनर इंजिनियरिंग' थीम पर आयोजित इस अधिवेशन में संभागियों को परम पावन आचार्यप्रवर से पावन पाथेय प्राप्त हुआ। विभिन्न सत्रों में तेरापंथ प्रोफेशनल फोरम के आध्यात्मिक पर्यवेक्षक मुनि रजनीशकुमारजी, समणी आगमप्रज्ञाजी और समणी मर्यादाप्रज्ञाजी ने प्रशिक्षण दिया। श्री प्रशान्तवीर पाण्डियन, श्री अशोक बांठिया, प्रज्ञा दुधोड़िया, पूजा खींवसरा और श्री सुनील बाफणा के भी वक्तव्य हुए।

परम श्रद्धास्पद आचार्यप्रवर के पावन सान्निध्य में (२१ अक्टूबर २०१८ को) आयोजित तृतीय राष्ट्रीय डॉक्टर्स कॉन्फ्रेन्स में ६१ व्यक्ति संभागी बने। 'हेल्थ बियोंड मेडिकल साइंस' थीम पर आधारित इस कॉन्फ्रेन्स में संभागीजनों को परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर ने पावन संबोध प्रदान किया। मुनि रजनीशकुमारजी, मुनि सुधाकरजी, साध्वी शुभ्रयशाजी, समणी चारित्रप्रज्ञाजी और समणी मल्लिप्रज्ञाजी ने प्रशिक्षण दिया। कॉन्फ्रेन्स में विशेष रूप से उपस्थित वरिष्ठ न्यूरोलोजिस्ट डॉ. अर्जुनदास, वरिष्ठ कॉर्डिक सर्जन डॉ. एम.आर. गिरिनाथ, डॉ. जयश्रीगोपाल, डॉ. रघुनाथ, डॉ नितेश जैन, डॉ. प्रकाशचन्द जैन, डॉ. सोहनलाल जैन, डॉ. सुरेश सकलेचा, डॉ. कमल भंसाली, डॉ. कांति श्यामसुखा, तेरापंथ प्रोफेशनल फोरम के अंन्तर्गत मेडिकल चेयरमेन डॉ. कमलेश नाहर, डॉ. योगिता पूनमिया और श्री राकेश खटेड़ के वक्तव्य हुए।

दुर्लभ मानव जीवन को फलवान बनाएं

२१ अक्टूबर। परम पावन आचार्यप्रवर ने मुख्य प्रवचन कार्यक्रम के दौरान 'ठाणं' आगमाधारित अपने पावन प्रवचन में कहा--'शास्त्रकार ने बताया है कि मनुष्य छह प्रकार के होते हैं- १. जम्बूद्वीप में उत्पन्न मनुष्य। २. धातकी खण्ड द्वीप के पूर्वी भाग में उत्पन्न मनुष्य। ३. धातकी खण्ड के पश्चिमी भाग में उत्पन्न मनुष्य। ४. पुष्करवर द्वीपार्द्ध के पूर्वी भाग में उत्पन्न मनुष्य। ५. पुष्करवर द्वीपार्द्ध के पश्चिमी भाग में उत्पन्न मनुष्य। ६. अन्तर्द्वीपों में उत्पन्न मनुष्य। यह एक भूगोल का विषय है कि मनुष्य कहां पैदा होते हैं। संक्षेप में यों कहा जा सकता है कि मनुष्यों की उत्पत्ति अढाई द्वीप में ही हो सकती है।

हम जिस द्वीप में रह रहे हैं उसका नाम है जम्बूद्वीप। यह लवण समुद्र के बीच में है। जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र भी है, ऐरवत क्षेत्र भी है और महाविदेह क्षेत्र भी है। भरत क्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र में तो तीर्थंकर निर्धारित समय पर ही हो सकते हैं, किन्तु महाविदेह क्षेत्र में तो तीर्थंकर हमेशा विद्यमान रहते हैं। हमारी दुनिया कभी भी तीर्थंकरों से खाली कभी नहीं होती। अढाई द्वीप में कम से कम बीस तीर्थंकर हमेशा रहते ही हैं और ज्यादा से ज्यादा एक समय में एक साथ १७० तीर्थंकर अढाई द्वीप में विद्यमान रह सकते हैं।

मनुष्य जम्बूद्वीप में भी पैदा होते है। जम्बूद्वीप लवण समुद्र के बीच स्थित हैं। लवण समुद्र के बाद धातकी खण्डद्वीप है। उसके दो भागों --पूर्वी और पश्चिमी में भी मनुष्य पैदा हो सकते हैं। इसी प्रकार आगे

स्थित पुष्करवर द्वीप के अर्द्धभाग के पूर्वी और पश्चिमी भागों में भी मनुष्य पैदा हो सकते हैं। अन्तर्द्वीप में भी मनुष्य पैदा हो सकते हैं। भूगोल के अनुसार मनुष्यों के पैदा होने के ये छह स्थान हैं।

हमारी दुनिया में सबसे कम प्राणी गर्भज मनुष्य (पुरुष) होते हैं। पुरुषों से सत्ताइस गुणा ज्यादा मनुष्य महिलाएं होती हैं, ऐसा हमारे आगम वाङ्मय और थोकड़े में बताया गया है। मनुष्य हमारी सृष्टि का विशिष्ट प्राणी होता है। मनुष्य ही साधना करके केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है और फिर उसकी आत्मा मोक्ष को प्राप्त कर लेती है।'

मनुष्य जीवन को वृक्ष से उपमित करते हुए आचार्य सोमप्रभसूरि ने इसके छह फल बताए हैं। फलवान वृक्ष का महत्त्व अधिक होता है। मानव जन्मरूपी वृक्ष के छह फल इस प्रकार हैं--

१. जिनेन्द्र पूजा--जिनेश्वर भगवान का भक्ति से स्मरण करना चाहिए। 'णमो अरहंताणं' के जप के माध्यम से जिनेश्वर भगवान की भक्ति की जा सकती है। 'उक्कित्तणं' (लोगस्स) के पाठ में चौबीस तीर्थंकरों की नामपूर्वक स्तुति हो जाती है। सात श्लोकों वाले इस 'लोगस्स' की बारह माह तक यदि कोई पूरी माला फेर लेता है तो आराधना का एक अच्छा उपक्रम हो सकता है।

२. गुरुपर्युपासना--जो गुरु स्वयं साधना करने वाले और दूसरों को साधना का पथ बताने वाले हों, उनकी उपासना करनी चाहिए।

३. सत्त्वानुकंपा--प्राणी मात्र के प्रति दया का भाव रहना चाहिए। द्वेषवश, आवेशवश प्राणियों को कष्ट देने का प्रयास नहीं करना चाहिए। सब प्राणियों के साथ मैत्री का भाव रहना चाहिए।

४. शुभपात्रदान--शुद्ध साधु को शुद्ध दान देना चाहिए। गृहस्थों को सोचना चाहिए कि हमारे लिए बने हुए भोजन का थोड़ा अंश भी यदि शुद्ध साधु के पात्र में चला जाए तो हम धन्य हो जाएं।

५. गुणानुराग--गुणी व्यक्तियों के गुणों की अनुमोदना करनी चाहिए। दूसरों के प्रति ईर्ष्या भाव नहीं, प्रमोद भाव रहना चाहिए। अपने जीवन में भी गुणों को ग्रहण करने की भावना रखनी चाहिए और तदनुरूप प्रयास भी करना चाहिए।

६. आगम श्रवण--शास्त्र की बातों को सुनना चाहिए। आगमवाणी का अपने आप में बहुत महत्त्व है। यह विशिष्ट वाणी है। इसे सुनकर और पढ़कर मानों कान व आंखें भी धन्य हो जाते हैं।

मनुष्यों को सोचना चाहिए कि जिस मानव जीवन को दुर्लभ बताया गया, वह हमें प्राप्त है। इसका सदुपयोग करने का प्रयास करना चाहिए।'

स्मृति, चिन्तन और कल्पना का सदुपयोग करें संज्ञी मनुष्य

२२ अक्टूबर। परमाराध्य आचार्यप्रवर ने अपने मुख्य प्रवचन कार्यक्रम के अंतर्गत 'ठाणं' आगमाधारित अपने मंगल प्रवचन में कहा--'मनुष्यों के मूलतः दो प्रकार हैं--सम्मूर्च्छिम और गर्भावक्रान्तिक अथवा गर्भज। सम्मूर्च्छिम मनुष्य को असंज्ञी मनुष्य कहा जाता है और गर्भज मनुष्य को संज्ञी मनुष्य कहा जाता है। सम्मूर्च्छिम मनुष्य गर्भज मनुष्य से उत्पन्न होते हैं। गर्भज मनुष्य वे होते हैं, जो गर्भ में आकर उत्पन्न होते हैं। जिसमें मन होता है, वह संज्ञी मनुष्य होता है। चिंतन, स्मृति और कल्पना कि क्रिया संज्ञी मनुष्य में होती है। हम सभी संज्ञी मनुष्य हैं क्योंकि हम चिंतन, स्मृति और कल्पना कर सकते हैं। असंज्ञी मनुष्य वह होता है, जिसके मन नहीं होता। वह मनुष्य इतना सूक्ष्म होता है कि उसे आंखों से देखा ही नहीं जा सकता। असंज्ञी मनुष्य संज्ञी मनुष्यों के मल, मूत्र, श्लेष्म आदि में पैदा होते हैं। उन्हें भी पंचेन्द्रिय बताया गया है।

शास्त्रकार ने उत्पत्ति की दृष्टि से असंज्ञी मनुष्यों को तीन प्रकार का बताया है--कर्मभूमि में उत्पन्न होने वाले, अकर्मभूमि में पैदा होने वाले और अन्तर्दीपों में पैदा होने वाले। इसी प्रकार संज्ञी मनुष्यों के भी ये तीन प्रकार हैं। इस प्रकार उत्पत्ति की दृष्टि से मनुष्यों के कुल छह प्रकार हो जाते हैं।

कर्मभूमियां पन्द्रह हैं--पांच भरत, पांच ऐरवत और पांच विदेह। हमारे जम्बूद्वीप में एक भरत क्षेत्र, एक ऐरवत क्षेत्र और एक विदेह अर्थात् महाविदेह क्षेत्र है। दूसरा क्षेत्र धातकी खण्ड है--उसमें दो भरत क्षेत्र, दो ऐरवत क्षेत्र और दो महाविदेह क्षेत्र होते हैं। अर्द्धपुष्करद्वीप में भी दो भरत क्षेत्र, दो ऐरवत क्षेत्र और दो महाविदेह क्षेत्र हैं। ये पन्द्रह कर्मभूमियां होती हैं। इन पन्द्रह कर्मभूमियों से ही मनुष्य साधु बनकर मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। इन पन्द्रह कर्मभूमियों में ही तीर्थ, तीर्थंकर होते हैं और वहीं साधु होते हैं। तीस अकर्मभूमियां हैं--पांच हेमवत, पांच हैरण्यवत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यकवर्ष, पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु। अकर्मभूमियों में मनुष्य तो होते हैं, किन्तु तीर्थंकर और साधु नहीं होते। ५६ अन्तर्दीपों में भी मनुष्य होते हैं, किन्तु वहां भी साधु और तीर्थंकर नहीं हो सकते।

असंज्ञी मनुष्य तो अविकसित प्राणी होते हैं। वे श्रावक, साधु आदि नहीं बन सकते। संज्ञी मनुष्य अपने जीवन में साधना कर सकते हैं। वे साधु भी बन सकते हैं, कभी केवलज्ञानी बन सकते हैं और फिर मोक्ष को भी प्राप्त कर सकते हैं। संज्ञी मनुष्य को ध्यान देना चाहिए कि उसका जीवन कैसा है? उसे आगे के बारे में भी सोचना चाहिए कि वह आगे के लिए क्या कर रहा हैं। उसे अपने शरीर की सक्षमता का संवर और निर्जरा की साधना में अच्छा उपयोग करना चाहिए। सामायिक, पौषध, सम्यक्त्व को स्वीकार कर प्रत्याख्यान करना आदि संवर के प्रयोग हैं। साधु सर्वविरति और श्रावक देशविरति वाला होता है, क्योंकि साधु के सर्व सावद्य योगों के त्याग होते हैं, जबकि श्रावक के आंशिक त्याग होते हैं। इसी प्रकार अनशन, ऊनोदरी आदि तप भी करना चाहिए। संज्ञी मनुष्य अपनी स्मृति, चिंतन और कल्पना की शक्ति का सदुपयोग कर आध्यात्मिक दृष्टि से आगे बढ़े, यह अभिलषणीय है।'

कार्यक्रम में श्री यशवंत सेठिया ने पूज्यप्रवर से ३४ की तपस्या का प्रत्याख्यान किया।

दो सर्वोच्च पुरुष : तीर्थंकर और चक्रवर्ती

२३ अक्टूबर। परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर ने मुख्य प्रवचन कार्यक्रम के अन्तर्गत 'ठाणं' आगमाधारित अपने मंगल प्रवचन में कहा--'हमारी दुनिया में मनुष्य होते हैं। परन्तु मनुष्य-मनुष्य में अन्तर हो सकता है। सारे व्यक्ति समान नहीं होते। कुछ उत्तम कोटि के व्यक्ति होते हैं, कुछ मध्यम कोटि के व्यक्ति होते हैं और कुछ अधम कोटि के व्यक्ति भी हो सकते हैं। शास्त्रकार ने ऋद्धिमान मनुष्यों के छह प्रकार बताए हैं--अर्हत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, चारण और विद्याधर।

हमारी इस दुनिया में दो व्यक्ति बहुत बड़े होते हैं--अर्हत और चक्रवर्ती। दूसरा कोई पुरुष इन दो की तुलना में आना संभव नहीं लग रहा है। अध्यात्म की दुनिया में अर्हत अर्थात् तीर्थंकर सर्वोच्च पुरुष होते हैं और भौतिक दुनिया में चक्रवर्ती सर्वोच्च पुरुष होते हैं। तीर्थंकर चार घाती कर्मों का क्षय कर चुके होते हैं। इसके साथ वे तीर्थ की स्थापना करने वाले, अधिकृत प्रवचनकार और अध्यात्म जगत के सर्वोच्च अधिनेता होते हैं। तीर्थंकरों में केवल आध्यात्मिक ऋद्धि ही नहीं, उनमें भौतिकता के रूप में पुण्यवत्ता भी होती है। अध्यात्म जगत में उनसे बढ़कर दूसरा कोई पुण्यवान व्यक्ति नहीं होता।

ऐसे भी व्यक्ति दुनिया में होते हैं, जो एक ही जीवन में चक्रवर्तित्व भी भोगते हैं और तीर्थंकर भी बनते हैं। भगवान शान्तिनाथ, भगवान कुंथुनाथ और भगवान अरनाथ एक ही जीवन में चक्रवर्ती भी बने और तीर्थंकर भी बने। उन्होंने भौतिकता की पराकाष्ठा को भी भोगा और अध्यात्म की पराकाष्ठा का भी अनुभव किया।

बलदेव वासुदेव के भाई होते हैं। वासुदेव का अपना पौरुष, पराक्रम होता है। चक्रवर्ती छह खण्ड के अधिपति होते हैं और वासुदेव तीन खण्ड के अधिपति होते हैं। वासुदेव इस जीवन में ऋद्धिमान होते हैं, किन्तु ठीक अगले भव में वे नरक में ही उत्पन्न होते हैं। चारण और विद्याधर विशेष लब्धि संपन्न होते हैं।'

श्रीमज्जयाचार्य का अनुशास्ता के रूप में प्राप्त होना धर्मसंघ का सौभाग्य

पूज्यप्रवर ने प्रसंगवश कहा--'आज आश्विन शुक्ला चतुर्दशी है। यह दिन परमपूज्य श्रीमज्जयाचार्य का जन्मदिवस है। जयाचार्य का जन्म और आचार्य भिक्षु का महाप्रयाण एक ही वर्ष में हुआ। श्रीमज्जयाचार्य को प्रज्ञा पुरुष कहा गया। जयाचार्य में ज्ञान का कितना विकास था। उन्होंने भगवती जोड़ की रचना की। उस ग्रंथ की रचना करने वाला कोई विशिष्ट व्यक्तित्व ही हो सकता है, ऐसा लग रहा है। उस ग्रंथ में विभिन्न राग-रागिणियों में उन्होंने आगम की बातों को प्रस्तुत किया है। मतिश्रुत ज्ञानियों में देखा जाए तो उनका ज्ञान अतिविशिष्ट था, ऐसा प्रतीत हो रहा है।

एक और ज्ञान के क्षेत्र में उनका अग्रगामित्व था तो दूसरी ओर संघीय प्रबन्धन में भी वे काफी आगे बढ़ गए थे। आज हमें जो जैन श्वेताम्बर तेरापंथ धर्मसंघ का इतना सुव्यवस्थित रूप प्राप्त है, उसकी प्राप्ति में भिक्षु स्वामी के बाद श्रीमज्जयाचार्य का हाथ है। उनकी बदौलत आज हमें हमारे धर्मसंघ का निखरा हुआ रूप प्राप्त है। हालांकि अन्य आचार्यों का भी इसमें योगदान है। ज्ञान की आराधना में रहने वाला वह व्यक्तित्व संघीय दृष्टि से भी गहराई में पैठा हुआ था। श्रुताराधना और संघ का प्रबंधन दोनों बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य हैं। उनका कवित्व कितना निखरा हुआ था। धर्मसंघ का सौभाग्य है कि श्रीमज्जयाचार्य जैसे अनुशास्ता प्राप्त हुए। वे जीवन के कुछ अन्तिम वर्षों में अपनी साधना में विशेष रूप से लग गए थे। मघवा के सहयोग से वे मानों निश्चिंत होकर अपनी साधना में विराजमान हो जाते। मघवा जैसे उत्तराधिकारी को संघ को सौंपने वाले श्रीमज्जयाचार्य थे। अष्टगणी संपदाओं में एक है श्रुत सम्पदा। जयाचार्य के जीवन में श्रुत सम्पदा प्राचुर्य लिए हुए थी, ऐसा प्रतीत हो रहा है।

वे अपने जीवन में मुनिश्री हेमराजजी स्वामी (सिरियारी) के सहवर्ती के रूप में रहे। अग्रणी और सहवर्ती की तो मानों जोड़ी होती है। सहवर्ती अच्छा मिला जाए तो अग्रणी के निमित्त के रूप में आनुकूल्य रह सकता है। श्रीमज्जयाचार्य ने सहवर्ती के रूप में भी बहिर्विहार किया, अग्रणी के रूप में बहिर्विहार किया और युवाचार्य रूप में भी बहिर्विहार किया।

सारे आचार्य एक समान नहीं होते। योग्यता, रुचि, विकास, शैली आदि अलग-अलग हो सकते हैं। हमारे धर्मसंघ में दस पूर्वाचार्य हुए। उन्होंने जिस प्रकार संघ की सेवा की, संघ की सुरक्षा और विकास का जो प्रयास किया, वह हमारे लिए स्तवनीय, स्मरणीय, मननीय है, यथायोग्य अनुकरणीय है। पूर्वाचार्यों का हमारे संघ पर उपकार है। हमारे पूर्वाचार्यों में तीन आचार्यों का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। महामना आचार्य भिक्षु के युग में संघ का प्रादुर्भाव, प्राकट्य हुआ। बाद में संघ को विशेष आगे बढ़ाने में श्रीमज्जयाचार्य का नाम लिया जा सकता है। उसके बाद और परिष्कार आदि की दृष्टि से गुरुदेव तुलसी का नाम लिया जा सकता है। तीनों आचार्य संसारपक्ष में मारवाड़ से जुड़े हुए थे। एक अपेक्षा से यों कहा जा सकता है कि तेरापंथ महाग्रंथ का पहला संस्करण भिक्षु स्वामी के समय, दूसरा संस्करण श्रीमज्जयाचार्य के समय और तीसरा संस्करण गुरुदेव तुलसी के समय प्रस्तुत हुआ।

आज मैं श्रीमज्जयाचार्य के जन्मदिवस पर उनका स्मरण करता हूं। उन्होंने हमारे धर्मसंघ को और अधिक विकसित तथा विभूषित किया। मैं उनके चरणों में पुनः-पुनः प्रणतियां अर्पित करता हूं।'

संघ में रहने वाला माला के मणके के समान

पूज्यप्रवर ने चतुर्दशी के संदर्भ में साधु-साध्वियों की उपस्थिति में 'हाजरी' का वाचन करते हुए प्रसंगवश कहा--'संघनिष्ठा महत्त्वपूर्ण होती है। संगठन में जो व्यक्ति होता है, उसका कितना महत्त्व होता है। जो अनुशासन को छोड़ देता है, आज्ञा को छोड़ देता है उसका महत्त्व कम हो जाता है। जो साधु आज्ञा में रहता

है, अनुशासन में चलता है, फिर भले वह कम पढ़ा-लिखा है, भले वह अच्छा व्याख्यान नहीं दे सकता, किन्तु वह तो माला के मणके के समान होता है। संघ में रहने वाला मानों माला का मणका होता है। मेरे पास माला है। एक बार पश्चिम रात्रि में मैं माला जप रहा था। जपते-जपते वह टूट गई। एक मणका शायद नीचे गिर गया। बाद में संभवतः साध्वीजी ने पुनः माला को ठीक कर दिया। वह माला पुनः अच्छे ढंग से जपने में काम आ रही है। जो मणका गिर गया था, उसे माला फेरने के लिए कौन हाथ में लेता। इसलिए माला में रहने का महत्त्व है। संघ में रहना माला में रहने के समान होता है। जो संघरूपी, अनुशासनरूपी माला से अलग हो जाता है, उस मणके का कितना क्या महत्त्व रह जाता है। तुच्छ बातों को लेकर संघ को छोड़ने वाला माला से गिरे हुए मणके के समान होता है। माला का मणका गिर जाता है तो दूसरा मणका डालकर उस कमी को पूरा किया जा सकता है, किन्तु जो मणका गिर गया, वह कहां जाएगा, उसका क्या होगा। संघ के जो अनुशासन में रहने वाले हैं, वे भले कम पढ़े-लिखे हों, वे सम्मान्य हैं। संघ के अनुशासन को छोड़ देने वाले भले पढ़े-लिखे हों, फिर वे उस रूप में सम्मान्य नहीं होते। बाहर जाने वाला भले कितना ही ध्यान करने वाला हो, कितना ही ज्ञानी हो, किन्तु मुझे कोई पूछे तो मैं तो यही कहना चाहूंगा कि ध्यान करना हो तो हमारे संघ के साधुओं से कर लो, चर्चा करनी हो तो संघ के साधुओं से कर लो, मंत्र पूछना हो तो संघ के साधुओं से पूछ लो, संघ से निकले हुए साधु के पास न तो ध्यान करने जाना चाहिए, न ही मंत्र पूछने जाना चाहिए, क्योंकि वह माला से गिरे हुए मणके के समान है। इसलिए उसका महत्त्व मैं कम मानता हूं। हमारे साधु-साध्वियां माला के मणके के समान हैं। संघ के एक-एक व्यक्ति का अपना-अपना स्थान है। संघ के प्रति हमारी निष्ठा रहनी चाहिए। संघ हमारे लिए साधना का आधार है, आलम्बन है, सहायक है।

मेरे मन में तो यह धारणा बन रही है कि वर्तमान में भले कोई मौन साधना करने वाला हो, भले कोई ध्यान करने वाला हो, भले कोई मंत्र साधना करने वाला हो, मेरे आकलन में संघ को छोड़ने वाले व्यक्ति का महत्त्व तो कम ही होता है। मेरी दृष्टि में तो आज के जमाने में अकेले की साधना खतरनाक होती है। अकेले में नुक्सान की संभावना ज्यादा लग रही है और विशेष साधना की संभावना मुझे कम लग रही है। जो साधना करनी हो, वर्तमान युग में संघ में ही करनी चाहिए।

संघ में रहते हुए कभी उलाहना मिल जाए, कभी कोई अनुशासनात्मक प्रयोग हो जाए, कुछ स्टेटस कम हो जाए, उसे भी सहन कर लेना चाहिए। पेड़ का मूल सुरक्षित रहे तो कभी पत्ते गिर भी जाएं तो वे कभी पुनः आ सकते हैं। मूल को ही उखाड़ दिया जाए तो पत्ते पुनः कहां से आएंगे। संघ में रहेंगे तो पुनः कभी उत्थान कर सकते हैं। इस प्रकार संघ के प्रति निष्ठा का भाव रखना कल्याणकारी और हितकारी होता है।'

हाजरी वाचन के उपरान्त साधु-साध्वियों ने अपने-अपने स्थान पर खड़े होकर लेख पत्र उच्चरित किया।

शासनश्री साध्वी चन्द्रकलाजी (हिसार) कालधर्म को प्राप्त

२२ अक्टूबर को हिसार में प्रवासित शासनश्री साध्वी चन्द्रकलाजी (हिसार) का प्रयाण हो गया। अज के कार्यक्रम में उनकी स्मृति सभा का भी उपक्रम रहा। उनके विषय में उद्‌गार व्यक्त करते हुए परम पूज्य आचार्यप्रवर ने कहा--'प्राप्त जानकारी के अनुसार साध्वी चन्द्रकलाजी संसारपक्ष में हिसार के अग्रवाल जैन परिवार से संबंधित थीं। उन्होंने विक्रम संवत् २००६ में करीब १६ वर्ष की अवस्था में परम पूज्य गुरुदेव तुलसी से साध्वी दीक्षा स्वीकार की। वे साध्वी लाडांजी (लाडनूं) की सेवा में करीब अट्ठाईस वर्षों तथा साध्वी भीखांजी (लाडनूं) के साथ दस वर्षों तक रहीं। सन् २००५ में परम पूज्य आचार्य महाप्रज्ञजी ने उन्हें अग्रगण्य नियुक्त किया। उन्होंने अनेक आगम कंठस्थ किए। कुछ साध्वियों के अस्वास्थ्य के दौरान उन्होंने उनकी सेवा की। वे प्रतिमाह करीब दस उपवास, प्रायः प्रतिवर्ष श्रावण-भाद्रपद में एकान्तर तप करती थीं तथा उन्होंने सात बार ढाई

सौ प्रत्याख्यान की तपस्या की। सिलीगुड़ी मर्यादा महोत्सव के अवसर पर मैंने उन्हें 'शासनश्री' संबोधन से सम्बोधित किया। वि.सं. २०७५ आश्विन शुक्ला त्रयोदशी को सायं लगभग ४.३५ बजे सागारी अनशन में वे कालधर्म को प्राप्त हो गईं। साध्वी प्रतिभाश्रीजी, साध्वी विकासप्रभाजी और साध्वी पुलकितप्रभाजी उनकी सहवर्ती साध्वियां थीं। साध्वी चन्द्रकलाजी अस्वस्थता की स्थिति में हिसार में थीं। साध्वी चन्द्रकलाजी की भावना थी कि साध्वी पुण्यप्रभाजी को उनके पास रखा जाए, ताकि उनके चित्तसमाधि रह सके। मैंने उनकी भावना को देखकर साध्वी पुण्यप्रभाजी को हिसार में रहने का निर्देश दे दिया। साध्वी चन्द्रकलाजी की आत्मा कल्याण की दिशा में आगे बढ़े, उनकी आत्मा का भवभ्रमण कम हो और वह मोक्ष को शीघ्र प्राप्त करे, मंगलकामना।'

महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी ने इस संदर्भ में कहा--'साध्वी चन्द्रकलाजी दीक्षित होकर लम्बे समय तक साध्वी श्री लाडांजी महासतीजी के सान्निध्य में रही। श्रीडूंगरगढ़ में उनका प्रवास हुआ। अपनी अग्रगण्य साध्वीजी के निर्देश से वहां उन्होंने महिलाओं व कन्याओं में अच्छा कार्य किया। आज भी वहां की बहनें उन्हें याद करती हैं। वे साध्वी गुलाबांजी महासतीजी के साथ भी रहीं। उसके बाद उन्हें साध्वी भीखांजी महासतीजी के साथ रखा गया तो उन्होंने वहां भी अपना दायित्व निभाया। उसके बाद उन्हें अग्रगण्य के रूप में विचरण करने का मौका मिला। उन्होंने अग्रगण्य के रूप में एक 'चाकरी' कर ली। वे पिछले अर्से से अस्वस्थ थीं। अस्वस्थता की स्थिति में भी उनके मनोबल की दृढ़ता उल्लेखनीय रही। कई प्रसंग आए, जब उन्हें डॉक्टरों द्वारा यह परामर्श दिया गया कि किसी बड़े शहर में जाकर चिकित्सा करवाएं, किन्तु उन्होंने स्वयं की चिकित्सा के लिए भिन्न सामाचारी में जाने से इनकार कर दिया। परम पूज्य आचार्यप्रवर ने उनकी भावनाओं के अनुरूप उनकी चिकित्सा के लिए चित्तसमाधि की दृष्टि से व्यवस्था करवाई और साध्वी पुण्यप्रभाजी को हिसार में रखा। इस प्रकार उन्होंने बीमारी की स्थिति में भी चित्तसमाधिपूर्वक अपनी जीवन यात्रा संपन्न की। यह सबके लिए अभिलषणीय है कि हम दृढ़ता के साथ धर्मसंघ में डटे रहें, साधना करें और अपने जीवन की आहुति इस संघ में ही दें। साध्वीश्री चन्द्रकलाजी की आत्मा उत्तरोत्तर विकास करती हुई अपने लक्ष्य को प्राप्त करे, यही मंगलकामना।

विज्ञप्ति अंक २६ में सुधारकर पढ़ें

विज्ञप्ति पृष्ठ ७--पर्युषण पर्वाराधना महाशिविर के अंतर्गत मुनि सत्यकुमारजी द्वारा कायोत्सर्ग का क्रम संपादित किया गया।

विज्ञप्ति पृष्ठ १४--पावस प्रवास में सुधारकर पढ़ें शीर्षक के अन्तर्गत साध्वीश्री केवलयशाजी (भुज) का क्रमांक १६४२ पढ़ा जाए।

विज्ञप्ति के संदर्भ में पत्र व्यवहार का पता एवं संपर्क सूत्र

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3 पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
मो.नं. - 7044778888 Email : vigyapti@terapanthinfo.com

ऑनलाइन विज्ञप्ति Terapanth मोबाईल एप तथा www.terapanthinfo.com पर उपलब्ध

●

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा के लिए मुद्रक एवं प्रकाशक- संजय खटेड़ द्वारा पवन प्रिंटर्स, जे- 9 नवीन शाहदरा, दिल्ली से मुद्रित तथा अणुव्रत भवन, 210 दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली- 110002 से प्रकाशित। सम्पादक : छगनसिंह सांखला